विश्व पटल पर

साम्राज्यवाद के रथ का चक्का अरब के रेगिस्तानों में फँसा

• शिशिर

कभी-कभी रेगिस्तान के भुरभुरे बालू में आदमी बिल्कुल इस तरह धँस जाता है जैसे कि वह दलदल हो। अमेरिकी साम्राज्यवादी हाथी मध्य-पूर्व के रेगिस्तान में दलदल से भी बुरी तरह जा धँसा है। अभी इराक पर अमेरिकी कब्जा हुए ज्यादा दिन नहीं बीते हैं और इस बर्बर साम्राज्यवादी युद्ध की तार्किक परिणतियाँ दिखने लगी हैं।

युद्ध समाप्ति के बाद से छापामार हमलों में मारे जाने वाले अमेरिकी सैनिकों की संख्या 500 को पार कर चुकी है। अमेरिका को उम्मीद थी कि सद्दाम हुसैन के पकड़े जाने के बाद छापामार हमलों में कमी आएगी। लेकिन हो उल्टा रहा है। हर दिन इराकियों का प्रतिरोध संघर्ष संगठित और व्यापक होता जा रहा है। असली लड़ाई तो अब शुरू हुई है और अमेरिका को भी इस बात का अहसास होने लगा है।

पिछला पूरा वर्ष अमेरिकी और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के मिथ्या प्रचारों, झूठे दावों और उनके बेशर्म भण्डाफोड़ों से भरा रहा। जिस झूठ को वजह बताकर अमेरिकी सत्ताधारियों ने इराक पर हमला किया था वह बेनकाब हो चुका है। इराक में कहीं भी व्यापक जनसंहार के हथियार नहीं मिले। साथ ही अमेरिका ने यह आरोप भी लगाया था कि वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हमले के पीछे सद्दाम का हाथ है और बिन लादेन के साथ उसके सम्बन्ध हैं। यह भी झूठ साबित हो चुका है। इन दोनों झूठों के पर्दाफाश के बाद बुश प्रशासन और ब्रिटिश सत्ताधारियों को भी मानना पड़ा कि यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि इराक के पास जनसंहार के हथियार थे। इस स्वीकारोक्ति के बाद बुश-ब्लेयर गिरोह के मुँह पर कालिख फत गयी है। इससे इन साम्राज्यवादियों की इनके अपने देशों में भी काफी भद्द पिटी है। इसके अलावा शासक वर्गों के बीच की दरारें और गहरी हो गयी हैं। अमेरिकी सत्ताधारी गिरोह के ही कई तत्व यह स्वीकारने लगे हैं कि बुश ने सत्तासीन होते ही इराक पर हमला करके वहाँ की अकूत तेल सम्पदा; (विश्व के कुल तेल का 16 फीसदी) पर कब्जा जमाने के मंसूबे बांध लिए थे।

अब यह एक 'ओपेन सीक्रेट' है कि व्यापक जनसंहार के हथियार, और सद्दाम के बिन लादेन से सम्बन्ध की बात बहाने मात्र थे। इसके बारे में तो पश्चिमी मीडिया तक में लेख आ चुके हैं कि यह और कुछ नहीं सिर्फ तेल की राजनीति थी जिसकी वजह से यह सारे झूठ रचे गये और इराक की जनता पर यह विनाशकारी युद्ध थोपा गया। कहने की जरूरत नहीं है कि ओसामा बिन लादेन और अल कायदा तथा तालिबान के नाम पर अफगानिस्तान पर किये गये अमेरिकी हमले की अन्तर्कथा भी कुछ ऐसी ही थी। अमेरिका का मकसद था कैस्पियन सागर के बेसिन के विशाल तेल भण्डार तक अपनी पहुँच सुनिश्चित करना। पश्चिम एशिया के बाद, दुनिया का सबसे बड़ा तेल भण्डार यही है, जिसे दुनिया भर के साम्राज्यवादी ललचायी निगाहों से देख रहे हैं।

तेल पर कब्ज़े के अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण वजह भी थी। यह है–अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतियोगिता। इस उपादान को थोड़े विस्तार से समझना जरूरी है।

इराक युद्ध एक ओर तो वहाँ की जनता के खिलाफ अमेरिकी साम्राज्यवादियों का नृशंस युद्ध था, साथ ही वह ब्रिटेन-अमेरिका धुरी का फ्राँस-जर्मन धुरी के खिलाफ भी एक परोक्ष युद्ध था। विश्व पूँजीवाद का अमेरिका निर्विवाद नेता है। आने वाले वर्षों में यह स्थिति जल्दी बदलने भी नहीं वाली है। लेकिन यह भी सच है कि पिछले दो दशकों के दौरान मार्क और येन की ताकत डालर के वर्चस्व को चुनौती दे रही थी और आज यूरो और येन दे रहे हैं। यूरो और डालर के बीच मुद्रा-युद्ध शुरू हो चुका है जो लगातार तीखा होता जा रहा है।

इराक अमेरिका का कोपभाजन इसलिए भी बना कि इराक ने नवम्बर 2000 में तेल व्यापार के लिए यूरो को मुद्रा के रूप में अपना लिया, बजाय डालर के। अकेले इराक के इस निर्णय के चलते डालर के मुकाबले यूरो की कीमत जो पहले 82 सेण्ट थी बढ़कर 1.5 डालर हो गयी और यूरो की चुनौती और तगड़ी हो गयी। अमेरिका डालर का वर्चस्व गम्भीर आर्थिक संकट के बावजूद इसलिए कायम रख पा रहा है क्योंकि विश्व के सबसे बड़े व्यापार यानी तेल व्यापार की मुख्य मुद्रा डालर है और उसे अन्य देशों की सेवाओं के बदले में बस डालर छापकर देने होते हैं। यानी, अपने आयातों के लिए अमेरिका को वस्तुतः कुछ नहीं देना पड़ता। और तेल के लिए सारे देशों को अमेरिका से मनमानी शर्तों पर डालर खरीदने पड़ते हैं। इराक के इस कदम के बाद अमेरिका इस स्थिति में आ गया कि यदि कल ईरान और वेनेजुएला भी ऐसा कर दें तो अमेरिकी वर्चस्व के पराभव की प्रक्रिया निर्णायक तौर पर और तीव्र गति से शुरू हो जायेगी। यह होना अमेरिकी शासकों के लिए एक भयावह दुःस्वप्न जैसा था और इसलिए इराक को उसकी "गुस्ताखी" के लिए कोई बहाना ढूँढकर सजा देना ज़रूरी था। यानी इराक का तेल हथियाने के अलावा प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादी ब्लॉक के खिलाफ अपने वर्चस्व को कायम रखना भी यह युद्ध छेड़ने के पीछे अमेरिका की एक अहम वजह थी।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि साम्राज्यवाद के निर्विवाद नेता की अपनी हैसियत को बनाए रखने में वह फ़िलहाल कामयाब हुआ है। अलग-अलग धरातलों पर विभिन्न यूरोपीय शक्तियाँ विरोध के बावजूद अन्त में डालर की ताकत के आगे झुकीं।

अब अमेरिका द्वारा इराक पर हमले की वजह के सारे झूठ बिल्कुल खुलकर सामने आ गये हैं और अंशों में सत्ताधारी गिरोह के कई तत्व भी इसे स्वीकार रहे हैं। इराक में प्रतिरोध युद्ध लगातार तेज होता जा रहा है और अमेरिका में उतरने वाले ताबूतों की संख्या बढ़ती जा रही है अमेरिका की इराक में प्राथमिकताएँ कुछ यूँ थीं। **सबसे पहले** तो अमेरिका इराक में तेल निकालकर बेचना और पुनर्निर्माण के काम में अपने देश की कम्पनियों का मुनाफा सुनिश्चित करना चाहता था। पुनर्निर्माण के लिए अमेरिकी कम्पनियाँ दौड़ पड़ीं और यह दौड़ इतनी नंगी थी कि पश्चिमी मीडिया के ढाँकते-तोपते भी दिखलाई पड़ने लगी।

लेकिन इस मंसूबे में अमेरिकी सफल नहीं हो पा रहे हैं। वजह है छापामार युद्ध का दिन-पर-दिन शक्तिशाली और संगठित होते जाना। अमेरिकी बन्दर की मुट्ठी इराकी तेल के मटके में फँस गयी है। बेहाल अमेरिकी सैनिकों पर हमले बढ़ते जा रहे हैं। यह टिप्पणी लिखे जाने के समय अमेरिकी सैनिकों पर रोज होने वाले हमलों की औसत संख्या 35 है। यह बढ़ती जाएगी। यह बात दिन के उजाले की तरह साफ है। दूसरी गौर करने वाली बात यह है कि पहले इराकी छापामार योद्धा घर में बनाए गए बमों और छोटे हथियारों का इस्तेमाल कर रहे थे और अब वे छोटी मिसाइलों, राकेटों, विस्फोटकों से भरी गाड़ियों और ग्रेनेडों का इस्तेमाल कर रहे हैं। यह साफ तौर पर दिखलाता है, कि इराकी प्रतिरोध युद्ध आने वाले समय में उत्तरोत्तर मजबूत होता जाएगा।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह प्रतिरोध युद्ध "सद्दाम के बचे-खुचे समर्थकों" द्वारा नहीं चलाया जा रहा, जैसा कि अमेरिकी सैनिक अधिकारी और पॉल ब्रेमर दावा कर रहे हैं। स्वतःस्फूर्त जनसंघर्षों की एक शानदार अरब परम्परा रही है। इराकी जनता इसी गौरवशाली परम्परा को आगे बढ़ा रही है। इस असलियत को नकारना अब साम्राज्यवादी मीडिया के लिए भी मुश्किल होता जा रहा है। गौरतलब है कि एसोसिएटेड प्रेस जैसी अमेरिकी समाचार एजेंसियाँ भी इराकी छापामारों को आतंकवादी कहने की बजाय प्रतिरोध योद्धा कह रही हैं।

अमेरिका का **दूसरा सबसे अहम मंसूबा** था इराक में एक कठपुतली सरकार का गठन। वह सोच रहा था कि शिया बहुसंख्या सद्दाम के शासन के खिलाफ अमेरिकी साम्राज्यवाद का साथ देगी। लेकिन शियाओं और उनके राजनीतिक और धार्मिक नेताओं ने निष्पक्ष चुनावों और पूर्ण इराकी सरकार के गठन की माँग करके अमेरिकी आशाओं पर कुठाराघात कर दिया है। कुर्दों को सद्दाम हुसैन के बर्बर दमन का सामना करना पड़ा था, इसलिए अमेरिकी साम्राज्यवादियों को उनसे भी काफी उम्मीद थी। लेकिन कुर्द-बहुल इलाके के सबसे बड़े शहर मोसुल में अमेरिकी सेनाओं पर बढ़ते हमलों ने यह साफ कर दिया कि कुर्द भी अमेरिका की गोद में बैठने का विकल्प कभी नहीं चुनेंगे। कुर्दों ने सद्दाम हुसैन के दमन का स्वागत किया था लेकिन इराक को अमेरिका का खिलौना बनाने के वे हरगिज खिलाफ थे।

निस्संदेह इराक में कई शक्तियाँ यह प्रतिरोध युद्ध चला रहीं हैं। इनमें देशभक्त इराकी जनता है, सद्दाम समर्थक हैं, इस्लामी कट्टरपंथी ताकतें हैं, और वे वामपंथी शक्तियाँ हैं जिन्हें सद्दाम हुसैन ने कभी क्रूरता से कुचला था। लेकिन अमेरिकी हमलावरों को इराक की सरजमीं से खदेड़ने पर सभी एकजुट हैं ताकि अपने भविष्य का फैसला इराकी खुद कर सकें।

ऐसी सूरत में अमेरिका के शासक तबकों में इस विकल्प पर भी विचार चल रहा है कि शिया-सुन्नी-कुर्द तनावों को हवा देकर इराक का **बाल्कनीकरण** करके उसे तीन हिस्सों में बाँट दिया जाए। अगर अमेरिका ऐसा कोई कदम उठाता है तो अरब विश्व में उसे तीखे विरोध का सामना करना पड़ेगा। और पूरा अरब जगत तब साम्राज्यवाद-विरोधी उग्र जन-विस्फोटों का मंच बन जायेगा।

वैसे तो अमेरिकी परेशानी का मुख्य कारण इराक में तेजी से संगठित होता जनप्रतिरोध युद्ध है, लेकिन युद्ध-जनित आर्थिक संकट भी उसे कोई कम तनाव नहीं दे रहे हैं। एक तरफ तो इराक का तेल बेचने के मंसूबे पर मायूसी हाथ लगी है तो दूसरी तरफ अमेरिकी बजट का घाटा 500 अरब डालर की अभूतपूर्व ऊँचाइयों पर जा पहुँचा है और बुश प्रशासन की चिन्ता फिलहाल तो यह है कि इस वर्ष चुनावों में उसे इसका खामियाजा भुगतना पड़ सकता है। अमेरिकी जनता का एक हिस्सा तो पहले से ही युद्ध-विरोधी था, दूसरा विशाल हिस्सा जिसे अमेरिकी अन्धराष्ट्रवाद की तगड़ी खुराक देकर युद्ध का पक्षधर बनाया गया था, आर्थिक संकट और उससे बढ़ती बेरोजगारी (बुश के काल में 23 लाख अमेरिकी बेरोजगार हुए हैं) के कारण वह भी धीरे-धीरे युद्ध-विरोधी होता जा रहा है। लेकिन उसके विरोधी होने का सबसे बड़ा कारण अमेरिकी सैनिकों की इराक में बढ़ती मौतें हैं। यह प्रक्रिया जारी रही तो वियतनाम युद्ध के बाद वाली स्थिति पैदा होने की सम्भावना सच हो जाएगी। जिस तरह वियतनाम युद्ध के बाद अमेरिका में एक के बाद एक युद्ध-विरोधी आंदोलन, मानवाधिकार आंदोलन, छात्र आंदोलन, स्त्री आंदोलन, और अश्वेत आंदोलन शुरू हो गये थे, वैसे ही इराक युद्ध के बाद भी हो सकता है। वियतनाम युद्ध का दौर तो अमेरिकी अर्थव्यवस्था के वैभव का दौर था इसलिए अमेरिका यह सब जैसे-तैसे झेल पाया। लेकिन अब ऐसा होने की सम्भावना मंदी की मार झेल रहे अमेरिका के शासक वर्ग के लिए एक बेहद आतंककारी सम्भावना है।

सद्दाम हुसैन का पतन एक बुर्जुआ शासक का पतन था। हालात कुछ ऐसे बन गये थे कि उसे अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अपने इस्तेमाल के बाद दूध में पड़ी मक्खी की तरह फेंकना चाहा। इस पर उसे अमेरिका के खिलाफ खड़ा होना पड़ा और वह साम्राज्यवाद-विरोधी जनयुद्ध का नायक-सा प्रतीत होने लगा। लेकिन अगर उसके इतिहास को देखें तो पता चलता है कि ऐसा नहीं था। यह सही है कि सद्दाम हुसैन उसी युवा पीढ़ी का था जो नासिर के प्रभाव में सयानी हुई थी और जुझारू अरब राष्ट्रवाद की भावना से ओतप्रोत थी, लेकिन यह भी सच है कि सद्दाम ने गुट बनाकर साज़िश के

बूते लोकप्रिय सरकार का तख्तापलट कर दिया और सत्तासीन होने के बाद कम्युनिस्टों, शियाओं, कुर्दों और अपने तमाम विरोधियों को क्रूर दमन का निशाना बनाया। इराक की कम्युनिस्ट पार्टी अरब देशों की सबसे शक्तिशाली कम्युनिस्ट पार्टियों में से एक थी। ख्रुश्चेव के नकली समाजवाद के प्रभाव में इसका नेतृत्व कतारों की जुझारू चेतना को कमजोर बनाने का काम कर ही रहा था कि सद्दाम का कहर बरपा हो गया। कुर्दों के दमन का इतिहास जाना-पहचाना है। शियाओं के भी एक हिस्से को दमन का सामना करना पड़ा।

खाड़ी युद्ध की परिस्थितियों को याद करें। वहाँ काफी जटिलताएँ थीं। सद्दाम हुसैन को खाड़ी युद्ध के एक विशेष दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने इस्तेमाल किया और वे इस्तेमाल हुए भी–अपनी आधिपत्यवादी महत्वाकांक्षाओं के चलते। सद्दाम हुसैन की स्थिति आम तौर पर तीसरी दुनिया के उन सभी देशों के बुर्जुआ शासक वर्ग पर लागू होती है जो उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद अपने-अपने देशों में सत्तारूढ़ हुए। अरब देशों के सत्ताधारियों के दोमुँहेपन एवं ऐतिहासिक विश्वासघात और उनकी सीमाओं को हाल में हुआ लीबिया के शासक मुहम्मद कजाफी का घुटनाटेकू रवैया भी उजागर करता है।

पूरे अरब में अब जिस नई क्रान्तिकारी लहर के बीज पक रहे हैं वह राष्ट्रवाद के झण्डे तले और बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में फलीभूत नहीं हो सकती। फलस्तीन और इराक की घटनाएँ यही दिखलाती हैं। अब यह लड़ाई नए सिरे से साम्राज्यवाद-विरोधी पूँजीवाद-विरोधी क्रान्ति के झण्डे के नीचे होगी। इस लड़ाई में व्यापक मेहनतकश जनता के साथ बुर्जुआ वर्ग का कोई हिस्सा सहयोगी बनने की क्षमता ऐतिहासिक तौर पर खो चुका है। सच पूछें तो अरब देशों के जनसंघर्षों की अभी यही समस्या है। वहां जनता के हरावल दस्ते की कोई नई पीढ़ी यदि है भी तो भ्रूणावस्था में है। बहरहाल, जनता संघर्षों के दौरान सीखती है और संघर्षों का दहनपात्र ही क्रान्तिकारी हरावलों को भी तपाकर मजबूत बनाता है। यही प्रक्रिया आज अरब देशों में चल रही है।

(पृष्ठ 2 का शेष)

पाठक मंच

इतिहास का सच

तुम्हारे हाथ इतिहास बनाते हैं या आदमी
यह बात उसकी समझ के बाहर है
जो सिर्फ अपने लिए जीवित होता है
समाज और मनुष्य की अवधारणा
जिसके लिए बेमानी होती है
यह सच है कि उसने जब भी उकेरने की
कोशिश की है
अपनी कविता में इतिहास को
हर बार यही पाया है उसने कि
इतिहास उसक विरुद्ध होता जा रहा है
फनः वह इतिहास को दुहराने की
गलती भी करना चाहता है
लेकिन इतिहास तो इतिहास
पूरा विश्व उसके खिलाफ जाने लगता है
लिहाजा वह इतिहास के बाहर
चला जाता है अन्ततः
उसके पूरे वजूद के साथ

–रामनिहाल गुंजन
नया शीतल टोला, आरा (बिहार)

आह्वान का जनवरी-मार्च, 2003 अंक पढ़ा। जिसमें बेचैन करते सवाल (एकदलीय छात्र के, आत्महत्या) को पढ़कर अत्यन्त दुख हुआ, और भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था एवं विश्व में तथाकथित रूप से सर्वोच्च कहे जाने जाने वाले लोकतांत्रिक देश का नग्न रूप प्रकट हुआ है। इसमें मुख्यतः एक दलित छात्र की हत्या नहीं एक ग़रीब छात्रा की हत्या हुई है क्योंकि अगर यही छात्र धनाढ्य परिवार का होता तो न तो उसे इतना अपमानित होना पड़ता और न ही वह आत्महत्या करता। ऐसे प्रकरण देश की आर्थिक वैषम्यता को चित्रित करते हैं। वर्तमान देश में व्याप्त कुलीनवादी संस्कृति, जातिवाद, सामाजिक आर्थिक विषमता एवं अमानवीय कृत्यों को रोकने के लिए आह्वान ने जो आवाज दी है, अति प्रशंसनीय है। देश में सामाजिक एवं आर्थिक समानता आने पर ही इस तरह के प्रकरण नहीं होंगे। और इसके लिए भगतसिंह की राह पर चलना ही पड़ेगा। मैं आह्वान के निरन्तर सफलता की कामना करता हूँ।

–बी.एल.वर्मा
जयपुर

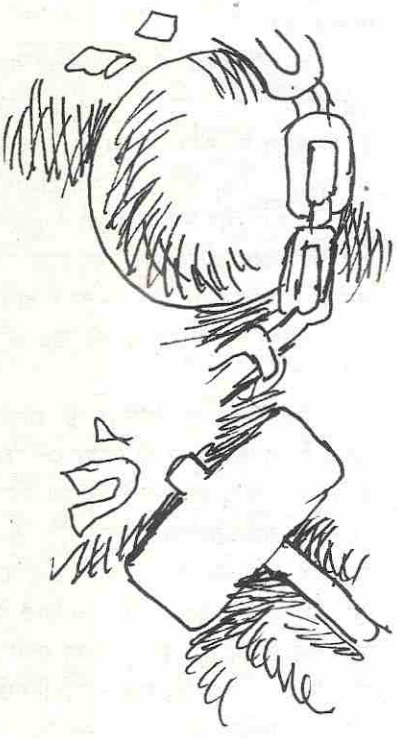

(पृष्ठ 28 का शेष)

प्रतिबद्ध अध्येता हमज़ा अलवी...

कट्टरपंथ, अमेरिका-पाक सैन्य सहयोग, पाकिस्तान की औरतों की स्थिति, साम्राज्यवाद, संस्कृति जैसे विषयों पर काफी काम किया। हमज़ा अलवी से असहमति, और गम्भीर असहमति के बहुतेरे मुद्दे मौजूद हो सकते हैं, लेकिन इस बात को वामपंथी बौद्धिक दायरों में निर्विवाद माना जाता है कि वे "मुक्त चिन्तक" नहीं थे। उनके सुपरिभाषित सामाजिक सरोकार और स्पष्ट प्रतिबद्धताएँ थीं, जिनको लेकर उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया। आज फैशनपरस्त प्रगतिशीलता और अकर्मक विमर्शों के घटाटोप में ऐसे प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी अब बहुत कम पाए जाते हैं। खास तौर पर इसलिए, अलवी का निधन वैज्ञानिक सामाजिक चिन्तन के लिए एक अपूरणीय क्षति है, इसमें कोई सन्देह नहीं।